International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

मोक्ष में जीवात्मा की स्थिति : वेदान्त के सन्दर्भ में

राजीव कुमार
शोधार्थी – संस्कृत विभाग
म.द.वि. रोहतक (हरियाणा)

शोध आलेख सार– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप पुरूषार्थ चतुष्टय भारतीय धर्म, संस्कृति एवं दर्शन का प्राण माना जाता है। इन चारों में भी मोक्ष सर्वोपरि एवं साध्य है। समाधिस्थ ऋषि–मुनियों के जीवन का भी परम ध्येय मोक्ष ही रहा है। समस्त आर्ष साहित्य मोक्ष का ही उपदेश करता है। वस्तुतः इस मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य भी मोक्ष की प्राप्ति करना है। अतः इस परम तत्व मोक्ष विषयक जिज्ञासा होना स्वाभाविक है। मोक्ष के विषय में संसार भर मे, सभी दार्शनिक सम्प्रदायों में अनेक मत प्रचलित हैं। अतःएव वेदान्त में मोक्ष विषयक चिन्तन विशद रूप में हुआ है, जिसके अनुसार मोक्ष भावात्मक है तथा आनन्द स्वरूप है। यही इस शोध के अन्तर्गत विस्तृत रूप में बताया गया है।

मूलशब्द– मोक्ष, उपनिषद्, वेदान्त, समाधिस्थ, आत्मसात्, ब्रह्मानन्द, सात्विक, अतीन्द्रिय, आप्लावित, सच्चिदानन्द स्वरूप।

भूमिका – वेदान्त नाम से मुख्यतया औपनिषदिक ज्ञान को अभिहित किया गया है। तथा यह भी सर्वस्वीकृत तथ्य है कि उपनिषदों में आध्यात्म अर्थात् जन्म–मृत्यु, मोक्ष, ईश्वर, जीव प्रकृति आदि का विषद् ज्ञान प्राप्त होता है। समाधिस्थ तत्ववेत्ता ऋषियों का यह ज्ञान प्रामाणिक एवं निर्भान्त माना जाता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इस ज्ञान को समझकर आत्मसात करने वाले जन संसार में विरले ही होते हैं। क्योंकि अतीन्द्रिय गूढ ज्ञान को ग्रहण करने के लिए सात्विक सूक्ष्म मेधा अपेक्षित होती है। दार्शनिक एवं आध्यात्मिक जगत में मोक्ष में जीवात्मा की स्थिति विषयक अनेक वाद प्रचलित हैं। मोक्ष

की अवधि के विषय में भी अनेक मत हैं। कोई मोक्ष की अवधि सान्त तो कोई अनन्त बतलाता है। किसी के मत में मोक्ष अवस्था में जीव का ईश्वर में लय माना जाता है, तो किसी के मत में आत्मा की स्ववतन्त्र. सत्ता मानी जाती है। यहाँ यह भी शंका उपस्थित होती है कि जब आत्मा को इन्द्रियों के माध्यम से आनन्द एवं सुख की अनुभूति होती है

ब्रह्म की आनन्दमयता– जब मोक्ष अवस्था में सूक्ष्म शरीर नहीं रहता तब आत्मा को आनन्द की अनुभूति कैसे होती है? इन सभी शंकाओं पर वेदान्त दर्शन में पर्याप्त चिन्तन हुआ है। तैतिरीयोपनिषद में कहा है–

''रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति''[1]

अर्थात् ब्रह्म आनन्द स्वरूप है। मोक्ष काल में उसे पाकर जीव भी आनन्दमय हो जाता है। तब स्थूल शरीर के अभाव में जीव उस आनन्द को कैसे भोगता है? इस शंका के समाधानार्थ शत्पथ ब्राह्मण में ऋषि कहते हैं –

स्पर्शयन् त्वग्भवति, पश्यन् चक्षुर्भवति,
रसयन् रसना भवति।
जिघ्रन् घ्राणं भवति, मन्वानो मनो भवति।
बोधयन्, बुद्धिर्भवति.....[2]

अर्थात् अपने शुद्ध स्वाभाविक गुणों के कारण जब सुनना चाहता है तो श्रोत्र, स्पर्श करना चाहता है, तो त्वचा, देखना चाहता है तो चक्षु, स्वाद के निमित्त रसना, गन्ध के लिए घ्राण, संकल्प–विकल्प करते समय मन और निश्चय करते समय बुद्धि हो जाता है। इस प्रकार जैसे शरीर के अधार पर इन्द्रियों के गोलकों के द्वारा जीव सारे कार्य करता है, वैसे मुक्ति में अपने सामर्थ्य से सब आनन्द भोगता है।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

मोक्ष की भावात्मकता– मोक्ष अवस्था में जीव का ईश्वर में लय नहीं होता, वह अपनी स्वतंत्र सत्ता में रहता है। मुण्डकोपनिषद् भी इस मत की पुष्टि करती है –

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नामरूपादिमुक्तः परात्परं पुरूषमुपैति दिव्यम्।।[3]

अर्थात् जिस प्रकार नदियां बहती हुई अपने नाम रूप का परित्याग करते हुए समुद्र में जा मिलती हैं, उसी प्रकार विद्वान् पुरूष नाम रूप का परित्याग करके परमात्मा को प्राप्त कर तद्रूप हो जाता है। प्रत्येक वस्तु के दो रूप होते हैं– एक उसका बाह्य रूप और दूसरी उसकी आन्तरिक सत्ता, जिसे वस्तुतत्त्व कहते हैं। अतः जिस प्रकार समुद्र में मिलने पर नदियों का बाह्य नाम रूप गंगा, यमुना आदि तो समाप्त हो जाता है, लेकिन समुद्र में मिलने पर भी उनके जल का अस्तित्व अवश्य बना रहता है। वैसे ही मोक्ष अवस्था में शरीर का नाम रूप यज्ञदत्त , सोमदेव आदि आत्मा के साथ नहीं रहता लेकिन आत्मा की स्वतंत्र सत्ता अवश्य विद्यमान रहती है तथा आत्मा ब्रह्मानन्द आप्लावित रहती है। इसी को अभेद की स्थिति कहा जाता है।

कठोपनिषद् में भी इसी मत की पुष्टि हुई है।

यथोदके शुद्ध शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति।
एवं मुने विजानतः आत्मा भवति गौतम।।[4]

अर्थात् जैसे शुद्ध जल में शुद्ध जल मिलकर वैसा ही हो जाता है, वैसे ही मुक्त आत्मा ब्रह्म में मिल जाता है। उपनिषद् के इस वचन से जीव–ब्रह्म का भेद स्पष्ट होता है, अभेद नहीं। यदि अभेद होता तो मिलने का प्रश्न ही नहीं उठता। छान्दोग्योपनिषद् में भी इसी तथ्य को पुष्ट किया गया है ''परम ज्योतिस्वरूप सम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते।।[5]

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

अर्थात् जो परमात्मा को अत्यन्त समीपता से प्राप्त हो कर अविद्या आदि दोषों से पृथक् होकर शुद्ध ज्ञानस्वरूप और सामर्थ्य वाला जीव मुक्त हो जाता है। भाव यह है कि स्थूल शरीर और इन्द्रियों का अभाव हो जाने पर भी जीवात्मा उस परम ज्योति को प्राप्त होकर अपने स्वरूप में बना रहता है। वह ब्रह्म में विलीन नहीं होता। वेदान्त दर्शनकार व्यास जी वेदान्त के चतुर्थ अध्याय में कहते हैं कि ''द्वादशाहवदुभयविधं वादरायणोऽतः''[6]

अर्थात् जैसे मृत शौच की निवृति के पश्चात् द्वादशवां जो दिन सो सत्रयागरूप माना है और भिन्न भी माना जाता है। उस दिन में यज्ञ के भाव और अभाव दोनों हैं। तद्वत् मोक्ष में भी भाव और अभाव रहता है। अर्थात् स्थूल शरीर तथा अविद्या आदि क्लेशों का अत्यन्त अभाव और ज्ञान तथा शुद्ध स्वशक्ति का भाव सदा मोक्ष में बना रहता है। सचिदान्नद स्वरूप परमात्मा के साथ सब जन्म–मरण आदि दुःखों से छूटकर सदानन्द में मुक्त जीव रहता है। ब्रह्मानन्दवली में भी इसी मत का प्रमाण है कि –

सत्यं ज्ञानंमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।
सोऽश्नुते सर्वान् कामान् ब्रह्मणा सह विपश्चितेति।।[7]

अर्थात् जो जीव सत्य, ज्ञान और अनन्त स्वरूप ब्रह्म स्वात्नर्यामी को स्वबुद्धि ज्ञान में निहित, जानता है, वह परम व्योम व्यापक स्वरूप जो परमात्मा उसमें मोक्ष समय में स्थिर होता है। पश्चात् सब दुःखों से छूटकर परमेश्वर के साथ सदानन्द में रहता है। कठोपनिषद् में आत्मा व परमात्मा के भेद को स्पष्ट करते हुए कहा है–

अणोरणीयान्मयहतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्चति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः।।[8]

अर्थात् जो सूक्ष्म से सूक्ष्म, बड़े से बड़ा परमात्मा इस जीव के ज्ञान अर्थात जीव के बीच में निहित है, परन्तु उस सर्वात्मा को अभिमानशून्य शोकादि दोष रहित परमात्मा का कृपा

पात्र जीव ज्ञान से देखता है और उस आत्मा अन्तर्यामी परमात्मा की महिमा सर्वशक्तिमत्व और व्यापकत्वादि गुण को भी वही देखता है, अन्य नहीं। अन्यत्र भी कठोपनिषद् में कहा है कि –

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्।।[9]

अर्थात् जो परमात्मा नित्य प्रकृति और जीव आदि के बीच में नित्य है तथा चेतन जो जीव उनके बीच में चेतन है, असंख्यात जीवादि पदार्थों के बीच में जो एक है, तथा जो पृथ्वी आदि स्वर्गपर्यन्त पदार्थों का रचन व विधान करता है, उस परमात्मा को जो जीव अपने आत्मा में ध्यान से देखते हैं, उन जीवों को ही निरन्तर शान्ति, सुख प्राप्त होता है, अन्य को नहीं। इसमें भी ''आत्मस्थ'' शब्द प्रत्यक्ष होने से ईश्वर और जीव का व्यापक सम्बन्ध होने से जीव और ब्रह्म कभी एक नहीं हो सकते। चूंकि आनन्दस्वरूप परमात्मा ही है, जीव तो ब्रह्म को प्राप्त कर आनन्दमय होता है। यथा वेदान्त में कहा है–

''नेतरोऽनुपपत्तेः''[10]

''भेदव्यपदेशाच्च''[11]

''मुक्तोपसृत्य व्यपदेशात्''[12]

अर्थात् ब्रह्म से भिन्न संसारी जीव आनन्द स्वरूप नहीं है। यदि ब्रह्म और जीव एक होते तो दोनों समान रूप से आनन्दमय होते और उपनिषद् में यह न कहा गया होता कि जीवात्मा मृत्यु के अनन्तर आनन्दमय परमात्मा को प्राप्त होता है। वस्तुतः जहाँ परमात्मा स्वयं आनन्दमय है, वहां जीवात्मा उस आनन्दमय परमात्मा को पाकर आनन्दमय होता है तथा भेद का कथन होने से भी ब्रह्म से जीव भिन्न है तथा मुक्त पुरूष ब्रह्म के समीप को प्राप्त हो के आन्नदित होते हैं। अर्थात् मुक्तात्माओं का प्राप्तव्य कहे जाने के कारण भी जीवात्मा से ब्रह्म भिन्न है।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परापरे।।[13]

अर्थात् उसके हृदय की गांठे टूट जाती हैं। सारे संशय निवृत हो जाते हैं और कर्म क्षीण हो जाते हैं। उस अवस्था में "विद्वान् नामरूपादिमुक्तः परत्परं पुरूषमुपैति दिव्यम्।।

अर्थात् ज्ञानी पुरूष नाम रूपतामक जगत से मुक्त होकर परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

सारांश – निश्चय ही यह जीवात्मा अपने अराध्य देव से भिन्न है। तथा मोक्ष अवस्था में भी अपने अराध्य व आनन्द प्रदाता परमात्मा से भिन्न रहते हुए ही आनन्द का स्वाद करता है। कभी भी जीवात्मा का ईश्वर में लय नहीं होता तथा यह मोक्ष का आनन्द अद्वितीय आनन्द होता है। मोक्ष प्राप्त करना ही मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है।

सन्दर्भ सूची–

- तैतिरीय उपनिषद् – 2/7
- शतपथ ब्राह्मणकाण्ड – 14
- मुण्डकोपनिषद् – 3/2/8
- कठोपनिषद – 4–15
- छान्दोग्योपनिषद – 8–3–4
- वेदान्त – 4–4–12
- तैतिरीयोपनिषद् – 1–1
- कठोपनिषद – 2–20
- कठोपनिषद – 3–15
- वेदान्त – 1–1–16
- वेदान्त – 1–1–17

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

- वेदान्त — 1—3—2
- मुण्डकोपनिषद् — 2—2—8